विषय

5

बदलती हुई सांस्कृतिक परंपराएँ

11091CH07

चौदहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक यूरोप के अनेक देशों में नगरों की संख्या बढ़ रही थी। एक विशेष प्रकार की 'नगरीय-संस्कृति' विकसित हो रही थी। नगर के लोग अब यह सोचने लगे थे कि वे गाँव के लोगों से अधिक 'सभ्य' हैं। नगर खासकर फ़्लोरेंस, वेनिस और रोम–कला और विद्या के केंद्र बन गए। नगरों को राजाओं और चर्च से थोड़ी बहुत स्वायत्तता (autonomy) मिली थी। नगर कला और ज्ञान के केन्द्र बन गए। अमीर और अभिजात वर्ग के लोग कलाकारों और लेखकों के आश्रयदाता थे। इसी समय मुद्रण के आविष्कार से अनेक लोगों को चाहे वह दूर-दराज़ नगरों या देशों में रह रहे हों, छपी हुई पुस्तकें उपलब्ध होने लगीं। यूरोप में इतिहास की समझ विकसित होने लगी और लोग अपने 'आधुनिक विश्व' की तुलना यूनानी व रोमन 'प्राचीन दुनिया' से करने लगे थे।

अब यह माना जाने लगा कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपना धर्म चुन सकता है। चर्च के, पृथ्वी के केंद्र संबंधी विश्वासों को वैज्ञानिकों ने गलत सिद्ध कर दिया चूँकि वे अब सौर-मंडल को समझने लगे थे। नवीन भौगोलिक ज्ञान ने इस विचार को उलट दिया कि भूमध्यसागर विश्व का केंद्र है। इस विचार के पीछे यह मान्यता रही थी कि यूरोप विश्व का केंद्र है (देखिए विषय 8)।

चौदहवीं शताब्दी से यूरोपीय इतिहास की जानकारी के लिए बहुत अधिक सामग्री दस्तावेज़ों, मुद्रित पुस्तकों, चित्रों, मूर्तियों, भवनों तथा वस्त्रों से प्राप्त होती है जो यूरोप और अमरीका के अभिलेखागारों, कला-चित्रशालाओं और संग्रहालयों में सुरक्षित रखी हुई हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के इतिहासकारों ने 'रेनेसाँ' (शाब्दिक अर्थ-पुनर्जन्म, हिंदी में पुनर्जागरण) शब्द का प्रयोग किया जो उस काल के सांस्कृतिक परिवर्तनों को बताता है। स्विटज़रलैंड के ब्रेसले विश्वविद्यालय के इतिहासकार जैकब बर्कहार्ट (Jacob Burckhardt, 1818-97) ने इस पर बहुत अधिक बल दिया। वे जर्मन इतिहासकार लियोपोल्ड वॉन रांके (Leopold von Ranke, 1795-1886) के विद्यार्थी थे। रांके ने उन्हें यह बताया कि इतिहासकार का पहला उद्देश्य है कि वह राज्यों और राजनीति के बारे में लिखे जिसके लिए वह सरकारी विभागों के कागज़ात और फाइलों का इस्तेमाल करे। पर बर्कहार्ट अपने गुरु के सीमित लक्ष्यों से असंतुष्ट थे। उनके अनुसार इतिहास-लेखन में राजनीति ही सब कुछ नहीं है। इतिहास का सरोकार उतना ही संस्कृति से है जितना राजनीति से।

1860 ई. में बर्कहार्ट ने *दि सिविलाईजेशन ऑफ दि रेनेसाँ इन इटली* नामक पुस्तक की रचना की। इसमें उन्होंने अपने पाठकों का ध्यान साहित्य, वास्तुकला और चित्रकला की ओर आकर्षित किया और यह बताया कि चौदहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक इटली के नगरों में किस प्रकार एक 'मानवतावादी' संस्कृति पनप रही थी। उन्होंने यह लिखा कि

© NCERT not to be republished

यह संस्कृति इस नए विश्वास पर आधारित थी कि व्यक्ति अपने बारे में खुद निर्णय लेने और अपनी दक्षता को आगे बढ़ाने में समर्थ है। ऐसा व्यक्ति 'आधुनिक' था जबकि 'मध्यकालीन मानव' पर चर्च का नियंत्रण था।

इटली के नगरों का पुनरुत्थान

पश्चिम रोम साम्राज्य के पतन के बाद इटली के राजनैतिक और सांस्कृतिक केन्द्रों का विनाश हो गया। इस समय कोई भी एकीकृत सरकार नहीं थी और रोम का पोप जो अपने राज्य में बेशक सार्वभौम था, समस्त यूरोपीय राजनीति में इतना मज़बूत नहीं था।

एक अरसे से पश्चिमी यूरोप के क्षेत्र, सामंती संबंधों के कारण नया रूप ले रहे थे और लातिनी चर्च के नेतृत्व में उनका एकीकरण हो रहा था। इसी समय पूर्वी यूरोप बाइज़ेंटाइन साम्राज्य के शासन में बदल रहा था। उधर कुछ और पश्चिम में इस्लाम एक सांझी सभ्यता का निर्माण कर रहा था। इटली एक कमज़ोर देश था और अनेक टुकड़ों में बँटा हुआ था। परंतु इन्हीं परिवर्तनों ने इतालवी संस्कृति के पुनरुत्थान में सहायता प्रदान की।

बाइज़ेंटाइन साम्राज्य और इस्लामी देशों के बीच व्यापार के बढ़ने से इटली के तटवर्ती बंदरगाह पुनर्जीवित हो गए। बारहवीं शताब्दी से जब मंगोलों ने चीन के साथ 'रेशम-मार्ग' (देखिए विषय 5) से व्यापार आरंभ किया तो इसके कारण पश्चिमी यूरोपीय देशों के व्यापार को बढ़ावा मिला। इसमें इटली के नगरों ने मुख्य भूमिका निभाई। अब वे अपने को एक शक्तिशाली साम्राज्य के अंग

मानचित्र 1 : इटली के राज्य।

के रूप में ही नहीं देखते थे बल्कि स्वतंत्र नगर-राज्यों का एक समूह मानते थे। नगरों में फ़्लोरेंस और वेनिस, गणराज्य थे और कई अन्य दरबारी-नगर थे जिनका शासन राजकुमार चलाते थे।

इनमें सर्वाधिक जीवंत शहरों में पहला वेनिस और दूसरा जिनेवा था। वे यूरोप के अन्य क्षेत्रों से इस दृष्टि में अलग थे कि यहाँ पर धर्माधिकारी और सामंत वर्ग राजनैतिक दृष्टि से शक्तिशाली नहीं थे। नगर के धनी व्यापारी और महाजन नगर के शासन में सक्रिय रूप से भाग लेते थे जिससे नागरिकता की भावना पनपने लगी। यहाँ तक कि जब इन नगरों का शासन सैनिक तानाशाहों के हाथ में रहा तब भी इन नगरों के निवासी अपने को यहाँ का नागरिक कहने में गर्व का अनुभव करते थे।

नगर-राज्य

कार्डिनल गेसपारो कोन्तारिनी (Cardinal Gasparo Contarini, 1483-1542) अपने ग्रंथ *दि कॉमनवेल्थ एण्ड गवर्नमेंट ऑफ वेनिस* (1534) में अपने नगर-राज्य की लोकतांत्रिक सरकार के बारे में लिखते हैं:

"... हमारे वेनिस के संयुक्तमंडल (Commonwealth) की संस्था के बारे में जानने पर आपको ज्ञात होगा कि नगर का संपूर्ण प्राधिकार... एक ऐसी परिषद् के हाथों में है जिसमें 25 वर्ष से अधिक आयु वाले [संभ्रांत वर्ग के] सभी पुरुषों को सदस्यता मिल जाती है...।

सबसे पहले मैं आपको यह बताऊँगा कि हमारे पूर्वजों ने ऐसा नियम क्यों बनाया कि सामान्य जनता को नागरिक वर्ग में-जिनके हाथ में संयुक्तमंडल के शासन की बागडोर है-शामिल क्यों नहीं किया जाए... क्योंकि उन नगरों में अनेक प्रकार की गड़बड़ियाँ और जन उपद्रव होते रहते हैं जहाँ की सरकार पर जन-सामान्य का प्रभाव रहता है। कुछ लोगों के विचार इससे अलग थे। उनका कहना था कि यदि संयुक्त मंडल का शासन-संचालन अधिक कुशलता से करना है तो योग्यता और संपन्नता को आधार बनाना चाहिए। दूसरी ओर सच्चरित्र नागरिक जिनका लालन-पालन उदार वातावरण में होता है वे प्राय: निर्धन हो जाते हैं.... इसीलिए हमारे बुद्धिमान और विवेकवान पूर्वजों ने ... यह विचार रखा कि इस सार्वजनिक नियम को बदल कर धन-संपन्नता को आधार न बनाकर कुलीन वंशीय लोगों को प्राथमिकता दी जाए। तथापि इस शर्त के साथ कि केवल उच्च अभिजात वंशीय लोग ही सत्ता में न रहें (क्योंकि ऐसा करने से चंद लोगों की शक्ति काफी बढ़ जाएगी न कि संयुक्तमंडल की)। गरीब लोगों को छोड़कर सभी नागरिकों का प्रतिनिधित्व सत्ता में होना चाहिए: चाहें वे अभिजात वंशीय हों या वे लोग हों जो अपने विशिष्ट गुणों के कारण उदात्त हों। इन सभी को सरकार चलाने का अधिकार मिलना चाहिए।"

जी. बेलिनी का दि रिकवरी ऑफ दि रेलिक ऑफ दि होली क्रास (पवित्र क्रॉस के स्मृतिशेष की पुनर्प्राप्ति) चित्र 1370 की एक घटना की याद में 1500 में बना परन्तु इसमें चित्रण 15वीं शताब्दी के वेनिस का है।

चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दियाँ	
1300	इटली के पादुआ विश्वविद्यालय में मानवतावाद पढ़ाया जाने लगा
1341	पेट्रार्क को रोम में 'राजकवि' की उपाधि से सम्मानित किया गया
1349	फ़्लोरेंस में विश्वविद्यालय की स्थापना
1390	जेफ़्री चॉसर की *'केन्टरबरी टेल्स'* का प्रकाशन
1436	ब्रुनेलेशी ने फ़्लोरेंस में ड्यूमा का परिरूप तैयार किया
1453	कुंस्तुनतुनिया के बाइज़ेंटाइन शासक को ऑटोमन तुर्कों ने पराजित किया
1454	गुटेनबर्ग ने विभाज्य टाइप (Movable type) से बाईबल का प्रकाशन किया
1484	पुर्तगाली गणितज्ञों ने सूर्य का अध्ययन कर अक्षांश की गणना की
1492	कोलम्बस अमरीका पहुँचे
1495	लियोनार्डो द विंची ने *'द लास्ट सपर' (अंतिमभोज)* चित्र बनाया
1512	माइकल एन्जिलो ने सिस्टीन चैपल की छत पर चित्र बनाए

विश्वविद्यालय और मानवतावाद

यूरोप में सबसे पहले विश्वविद्यालय इटली के शहरों में स्थापित हुए। ग्यारहवीं शताब्दी से पादुआ और बोलोनिया (Bologna) विश्वविद्यालय विधिशास्त्र के अध्ययन केंद्र रहे। इसका कारण था यह कि इन नगरों के प्रमुख क्रियाकलाप व्यापार और वाणिज्य संबंधी थे इसलिए वकीलों और नोटरी (यह सोलिसिटर और अभिलेखपाल दोनों के कार्य करते थे) की बहुत अधिक आवश्यकता होती थी क्योंकि वे नियमों को लिखते, उनकी व्याख्या करते और समझौते तैयार करते थे। इनके बिना बड़े पैमाने पर व्यापार करना संभव नहीं था। यही कारण था कि कानून का अध्ययन एक प्रिय विषय बन गया। लेकिन कानून के अध्ययन में यह बदलाव आया कि उसे रोमन संस्कृति के संदर्भ में पढ़ा जाने लगा। फ़्रांचेस्को पेट्रार्क (1304–1378) इस परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करते हैं। पेट्रार्क के लिए पुराकाल एक विशिष्ट सभ्यता थी जिसे प्राचीन यूनानियों और रोमनों के वास्तविक शब्दों के माध्यम से ही अच्छी तरह समझा जा सकता है। अतः उसने इस बात पर जोर दिया कि इन प्राचीन लेखकों की रचनाओं का बहुत अच्छी तरह से अध्ययन किया जाए।

इस शिक्षा कार्यक्रम में यह अंतर्निहित था कि बहुत कुछ जानना बाकी है और यह सब हम केवल धार्मिक शिक्षण से नहीं सीखते। इसी नयी संस्कृति को उन्नीसवीं शताब्दी के इतिहासकारों ने 'मानवतावाद' नाम दिया। पंद्रहवीं शताब्दी के शुरू के दशकों में 'मानवतावादी' शब्द उन अध्यापकों के लिए प्रयुक्त होता था जो व्याकरण, अलंकारशास्त्र, कविता, इतिहास और नीतिदर्शन विषय पढ़ाते थे। *लातिनी* शब्द 'ह्यूमेनिटास' जिससे 'ह्यूमेनिटिज़' शब्द बना है जिसे कई शताब्दियों पहले रोम के वकील तथा निबंधकार सिसरो (Cicero, 106–43 ई.पू.) ने, जो कि जूलियस सीज़र का समकालीन था, 'संस्कृति' के अर्थ में लिया था। ये विषय धार्मिक नहीं थे वरन् उस कौशल पर बल देते थे जो व्यक्ति चर्चा और वाद-विवाद से विकसित करता है।

इन क्रांतिकारी विचारों ने अनेक विश्वविद्यालयों का ध्यान आकर्षित किया। इनमें एक नया-नया स्थापित विश्वविद्यालय फ़्लोरेंस भी था जो पेट्रार्क का स्थायी नगर-निवास था। इस नगर ने तेरहवीं

क्रियाकलाप 1

इटली के मानचित्र में वेनिस को ढूँढ़िए और पृ. 154 पर दिए गए चित्र को ध्यान से देखिए। आप नगर का वर्णन कैसे करेंगे? यह शहर किसी कथीड्रल नगर से कैसे भिन्न है?

© NCERT not to be republished

फ़्लोरेंस के मानवतावादी जोवान्ने पिको देल्ला मिरांदोला (Giovanni Pico della Mirandola, 1463-94) ने *ऑन दि डिगनिटी ऑफ मैन* (1486) नामक पुस्तक में वाद-विवाद के महत्त्व पर लिखा–

"(प्लेटो और अरस्तू) के अनुसार सत्य की खोज करने और इसे प्राप्त करने के लिए वे हमेशा जुटे रहते थे और उनका कहना था कि जहाँ तक हो सके विचारगोष्ठियों में जाना चाहिए और वाद-विवाद करना चाहिए। यह उसी तरह है जैसे शरीर को मज़बूत बनाने के लिए कसरत ज़रूरी है, दिमाग की ताकत को बढ़ाने के लिए शब्दों के दंगल में उतरना ज़रूरी है। इससे दिमागी ताकत बढ़ने के साथ-साथ और अधिक ओजस्वी होती है।"

शताब्दी के अंत तक व्यापार या शिक्षा के क्षेत्र में कोई विशेष तरक्की नहीं की थी पर पंद्रहवीं शताब्दी में सब कुछ पूरी तरह बदल गया। किसी भी नगर की पहचान उसके महान नागरिकों के साथ-साथ उसकी संपन्नता से बनती है। फ़्लोरेंस की प्रसिद्धि में दो लोगों का बड़ा हाथ था। इनमें से एक व्यक्ति थे दाँते अलिगहियरी (Dante Alighieri, 1265 – 1321) जो किसी धार्मिक संप्रदाय विशेष से संबंधित नहीं थे पर उन्होंने अपनी कलम धार्मिक विषयों पर चलायी थी। दूसरे व्यक्ति थे कलाकार जोटो (Giotto, 1267–1337) जिन्होंने जीते-जागते रूपचित्र

फ़्लोरेंस, 1470 में बनाया गया एक रेखाचित्र।

(Portrait) बनाए। उनके बनाए रूपचित्र पहले के कलाकारों की तरह बेजान नहीं थे। इसके बाद धीरे-धीरे फ़्लोरेंस, इटली के सबसे जीवंत बौद्धिक नगर के रूप में जाना जाने लगा और कलात्मक कृतियों के सृजन का केन्द्र बन गया। 'रेनेसाँ व्यक्ति' शब्द का प्रयोग प्रायः उस मनुष्य के लिए किया जाता है जिसकी अनेक रुचियाँ हों और अनेक हुनर में उसे महारत प्राप्त हो। पुनर्जागरण काल में अनेक महान लोग हुए जो अनेक रुचियाँ रखते थे और कई कलाओं में कुशल थे। उदाहरण के लिए, एक ही व्यक्ति विद्वान, कूटनीतिज्ञ, धर्मशास्त्रज्ञ और कलाकार हो सकता था।

जोटो द्वारा रचित चित्र, असिसी, इटली।

इतिहास का मानवतावादी दृष्टिकोण

मानवतावादी समझते थे कि वह अंधकार की कई शब्ताब्दियों बाद सभ्यता के सही रूप को पुनः स्थापित कर रहे हैं। इसके पीछे यह मान्यता थी कि रोमन साम्राज्य के टूटने के बाद 'अंधकारयुग' शुरू हुआ। मानवतावादियों की भाँति बाद के विद्वानों ने बिना कोई प्रश्न उठाए यह मान लिया कि [यूरोप में चौदहवीं शताब्दी के बाद 'नये युग' का जन्म हुआ।] 'मध्यकाल' जैसी संज्ञाओं का प्रयोग रोम साम्राज्य के पतन के बाद एक हज़ार वर्ष की समयावधि के लिए किया गया। उनके यह

तर्क थे कि 'मध्ययुग' में चर्च ने लोगों की सोच को इस तरह जकड़ रखा था कि यूनान और रोमवासियों का समस्त ज्ञान उनके दिमाग से निकल चुका था। मानवतावादियों ने 'आधुनिक' शब्द का प्रयोग पंद्रहवीं शताब्दी से शुरू होने वाले काल के लिए किया।

मानवतावादियों और बाद के विद्वानों द्वारा प्रयुक्त कालक्रम (Periodisation)।

5–14 शताब्दी	मध्य युग
5–9 शताब्दी	अंधकार युग
9–11 शताब्दी	आरंभिक मध्य युग
11–14 शताब्दी	उत्तर मध्य युग
15 शताब्दी से	आधुनिक युग

हाल में अनेक इतिहासकारों ने इस काल विभाजन पर सवाल उठाया है। इस काल के यूरोप के बारे में जैसे-जैसे खोजें और शोध बढ़ते गए वैसे-वैसे विद्वानों ने शताब्दियों की सांस्कृतिक समृद्धि अथवा असमृद्धि को आधार मानकर तीक्ष्ण विभाजन करने में अपनी दुविधा जताई। किसी भी काल को 'अंधकार युग' की संज्ञा देना उन्हें अनुचित लगा।

विज्ञान और दर्शन–अरबीयों का योगदान

पूरे मध्यकाल में ईसाई गिरजाघरों और मठों के विद्वान यूनानी और रोमन विद्वानों की कृतियों से परिचित थे। पर इन लोगों ने इन रचनाओं का प्रचार-प्रसार नहीं किया। चौदहवीं शताब्दी में अनेक विद्वानों ने प्लेटो और अरस्तू के ग्रंथों से अनुवादों को पढ़ना शुरू किया। इसके लिए वे अपने विद्वानों के ऋणी नहीं, बल्कि वे अरब के अनुवादकों के ऋणी थे जिन्होंने अतीत की पांडुलिपियों का संरक्षण और अनुवाद सावधानीपूर्वक किया था (अरबी भाषा में प्लेटो, अफ़लातून और एरिसटोटिल, अरस्तू नाम से जाने जाते थे)।

जबकि एक ओर यूरोप के विद्वान यूनानी ग्रंथों के अरबी अनुवादों का अध्ययन कर रहे थे दूसरी ओर यूनानी विद्वान अरबी और फ़ारसी विद्वानों की कृतियों को अन्य यूरोपीय लोगों के बीच प्रसार के लिए अनुवाद कर रहे थे। ये ग्रंथ प्राकृतिक विज्ञान, गणित, खगोल विज्ञान (astronomy), औषधि विज्ञान और रसायन विज्ञान से संबंधित थे। टॉलेमी के *अलमजेस्ट* (खगोल शास्त्र पर रचित ग्रंथ जो 140 ई. के पूर्व यूनानी भाषा में लिखा गया था और बाद में इसका अरबी में अनुवाद भी हुआ) में अरबी भाषा के विशेष उपपद 'अल' का उल्लेख है जो कि यूनानी और अरबी भाषा के बीच रहे संबंधों को दर्शाता है।

मुसलमान लेखकों, जिन्हें इतालवी दुनिया में ज्ञानी माना जाता था, में अरबी के हकीम और मध्य एशिया के बुखारा के दार्शनिक इब्न-सिना* (Ibn Sina-लातिनी में एविसिना 980–1037) और आयुर्विज्ञान विश्वकोश के लेखक अल-राज़ी (रेज़ेस) सम्मिलित थे।

स्पेन के अरबी दार्शनिक इब्न रूश्द (लातिनी में अविरोज़ 1126–98) ने दार्शनिक ज्ञान *(फैलसुफ़)* और धार्मिक विश्वासों के बीच रहे तनावों को सुलझाने की चेष्टा की। उनकी पद्धति को ईसाई चिंतकों द्वारा अपनाया गया।

मानवतावादी अपनी बात लोगों तक तरह-तरह से पहुँचाने लगे। यद्यपि विश्वविद्यालयों में पाठ्यचर्या पर कानून, आयुर्विज्ञान और धर्मशास्त्र का दबदबा रहा, फिर भी मानवतावादी विषय धीरे-धीरे स्कूलों में पढ़ाया जाने लगा। यह सिर्फ इटली में ही नहीं बल्कि यूरोप के अन्य देशों में भी हुआ।

*इन व्यक्तियों के नामों की यूरोपीय वर्तनी ने बाद की पीढ़ियों को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि वे यूरोपीय थे!

इस काल के विद्यालय लड़कों के लिए ही थे।

© NCERT not to be republished

कलाकार और यथार्थवाद

उस काल के लोगों के विचार को आकार देने का साधन मानवतावादियों के लिए केवल औपचारिक शिक्षा ही नहीं थी। कला, वास्तुकला और ग्रंथों ने मानवतावादी विचारों को फैलाने में प्रभावी भूमिका निभाई।

ड्यूरर का तूलिका चित्र 1508– "प्रार्थना रत हस्त"

"कला प्रकृति में रची-बसी होती है। जो इसके सार को पकड़ सकता है वही इसे प्राप्त कर सकता है... इसके अतिरिक्त आप अपनी कला को गणित द्वारा दिखा सकते हैं। ज़िंदगी की अपनी आकृति से आपकी कृति जितनी जुड़ी होगी उतना ही सुंदर आपका चित्र होगा। कोई भी आदमी केवल अपनी कल्पना मात्र से एक सुंदर आकृति नहीं बना सकता जब तक उसने अपने मन को जीवन की प्रतिछवि से न भर लिया हो।"

– अल्बर्ट ड्यूरर (Albrecht Durer, 1471–1528)

ड्यूरर द्वारा बनाया गया यह रेखाचित्र (प्रार्थनारत हस्त) सोलहवीं शताब्दी की इतालवी संस्कृति का आभास कराता है जब यहाँ के लोग गहन रूप से धार्मिक थे। परंतु उन्हें मनुष्य की योग्यता पर भरोसा था कि वह निकट पूर्णता को प्राप्त कर सकता है और दुनिया तथा ब्रह्मांड के रहस्यों को सुलझा सकता है।

'दि पाइटा' चित्र में माइकेल एन्जिलो ने मेरी को ईसा के शरीर को धारण करते हुए दिखाया है।

पहले के कलाकारों द्वारा बनाए गए चित्रों के अध्ययन से नए कलाकारों को प्रेरणा मिली। रोमन संस्कृति के भौतिक अवशेषों की उतनी ही उत्सुकता के साथ खोज की गई जितनी कि अतीत के प्राचीन ग्रंथों की। रोम साम्राज्य के पतन के एक हज़ार साल बाद भी प्राचीन रोम और उसके उजाड़ नगरों के खंडहरों में कलात्मक वस्तुएँ मिलीं। अनेक शताब्दियों पहले बनी आदमी और औरतों की 'संतुलित' मूर्तियों के प्रति आदर ने उस परंपरा को कायम रखने के लिए इतालवी वास्तुविदों को प्रोत्साहित किया। 1416 में दोनातल्लो (Donatello, 1386–1466) ने सजीव मूर्तियाँ बनाकर नयी परंपरा कायम की।

कलाकारों द्वारा हूबहू मूल आकृति जैसी मूर्तियों को बनाने की चाह को वैज्ञानिकों के कार्यों से सहायता मिली। नर-कंकालों का अध्ययन करने के लिए कलाकर आयुर्विज्ञान कॉलेजों की प्रयोगशालाओं में गए। बेल्जियम मूल के आन्ड्रीयस वेसेलियस (Andreas Vesalius, 1514–64) पादुआ विश्वविद्यालय में आयुर्विज्ञान के प्राध्यापक थे। ये पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सूक्ष्म परीक्षण के लिए मनुष्य के शरीर की चीर-फाड़ (dissection) की। इसी समय से आधुनिक शरीर-क्रिया विज्ञान (Physiology) का प्रारंभ हुआ।

यह स्वनिर्मित रूपचित्र लियोनार्डो दा विन्ची (Leonardo da Vinci, 1452-1519) का है जिनकी आश्चर्यजनक अभिरुचि वनस्पति विज्ञान और शरीर रचना विज्ञान से लेकर गणित शास्त्र और कला तक विस्तृत थी। उन्होंने *मोना लीसा* और द *लास्ट सपर* चित्रों की रचना की।

उनका यह स्वप्न था कि वे आकाश में उड़ सकें। वे वर्षों तक आकाश में पक्षियों के उड़ने का परीक्षण करते रहे और उन्होंने एक उड़न-मशीन (Flying machine) का प्रतिरूप (Design) बनाया। उन्होंने अपना नाम 'लियोनार्डो दा विन्ची, परीक्षण का अनुयायी' रखा।

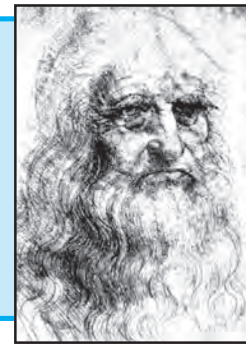

चित्रकारों के लिए नमूने के तौर पर प्राचीन कृतियाँ नहीं थीं। लेकिन मूर्तिकारों की तरह उन्होंने यथार्थ चित्र बनाने की कोशिश की। उन्हें अब यह मालूम हो गया कि रेखागणित (geometry) के ज्ञान से चित्रकार अपने परिदृश्य (Perspective) को ठीक तरह से समझ सकता है तथा प्रकाश के बदलते गुणों का अध्ययन करने से उनके चित्रों में त्रि-आयामी (three dimentional) रूप दिया जा सकता है। लेप चित्र (Painting) के लिए तेल के एक माध्यम के रूप में प्रयोग ने चित्रों को पूर्व की तुलना में अधिक रंगीन और चटख बनाया। उनके अनेक चित्रों में दिखाए गए वस्त्रों के डिज़ाइन और रंग संयोजन में चीनी और फ़ारसी चित्रकला का प्रभाव दिखाई देता है जो उन्हें मंगोलों से मिली थी (विषय 5 देखिए)।

इस तरह शरीर विज्ञान, रेखागणित, भौतिकी और सौंदर्य की उत्कृष्ट भावना ने इतालवी कला को नया रूप दिया जिसे बाद में 'यथार्थवाद' (realism) कहा गया। यथार्थवाद की यह परंपरा उन्नीसवीं शताब्दी तक चलती रही।

क्रियाकलाप 2

सोलहवीं शताब्दी ई. के इटली के कलाकारों की कृतियों के विभिन्न वैज्ञानिक तत्वों का वर्णन कीजिए।

वास्तुकला

पंद्रहवीं शताब्दी में रोम नगर भव्य रूप से पुनर्जीवित हो उठा। 1417 से पोप राजनैतिक दृष्टि से शक्तिशाली बन गए क्योंकि 1378 से दो प्रतिस्पर्धी पोप के निर्वाचन से जन्मी दुर्बलता का अंत हो गया था। उन्होंने रोम के इतिहास के अध्ययन को सक्रिय रूप से प्रोत्साहित किया। पुरातत्त्वविदों (पुरातत्व का नया हुनर था) द्वारा रोम के अवशेषों का सावधानी से उत्खनन किया गया। इसने वास्तुकला की एक 'नयी शैली' को प्रोत्साहित किया जो वास्तव में रोम साम्राज्य कालीन शैली का पुनरूद्धार थी जिसे अब 'शास्त्रीय' शैली कहा गया। पोप, धनी व्यापारियों और अभिजात वर्ग के लोगों ने उन वास्तुविदों (architect) को अपने भवनों को बनाने के लिए नियुक्त किया जो शास्त्रीय वास्तुकला से परिचित थे। चित्रकारों और शिल्पकारों ने भवनों को लेपचित्रों, मूर्तियों और उभरे चित्रों से भी सुसज्जित किया।

सोलहवीं शताब्दी की इटली की वास्तुकला ने रोम साम्राज्य कालीन अनेक भवनों की विशिष्टताओं की नकल की।

इस काल में कुछ ऐसे भी लोग हुए जो कुशल चित्रकार, मूर्तिकार और वास्तुकार, सभी कुछ थे। इसका सबसे श्रेष्ठ उदाहरण माईकल ऐंजेलो बुआनारोत्ती (Michael Angelo Buonarroti, 1475-1564) हैं जिन्होंने पोप के सिस्टीन चैपल की भीतरी छत में लेपचित्र, 'दि पाइटा' नामक प्रतिमा, और संट पीटर गिरजे के गुम्बद का डिज़ाइन बनाया और इनकी वजह से माईकल ऐंजेलो अमर हो गए। ये सारी कलाकृतियाँ रोम में ही हैं। वास्तुकार फिलिप्पो ब्रूनेलेशी

© NCERT not to be republished

(Philippo Brunelleschi,1337-1446) जिन्होंने फ़्लोरेंस के भव्य गुम्बद (Duomo) का परिरूप प्रस्तुत किया था, ने अपना पेशा एक मूर्तिकार के रूप में शुरू किया। इस काल में एक और अनोखा बदलाव आया। अब कलाकार की पहचान उसके नाम से होने लगी, न कि पहले की तरह उसके संघ या श्रेणी (गिल्ड) के नाम से।

दी ड्यूमा (Duomo), फ़्लोरेंस के कथीड्रल का गुम्बद, इसका डिज़ाइन ब्रूनेलेशी ने बनाया।

लिओन बतिस्ता अल्बर्टी (Leon Batista Alberti, 1402–72) ने कला सिद्धांत और वास्तुकला पर लिखा। उन्होंने लिखा है: "मैं उसे वास्तुविद् मानता हूँ जो नए-नए तरीकों का आविष्कार कर इस तरह अपने निर्माण को पूरा करे कि उसमें भारी वज़न को ठीक बैठाया गया हो और संपूर्ण कृति के संयोजन और द्रव्यमान में ऐसा तालमेल हो कि उसका सर्वाधिक सौन्दर्य उभर कर आए ताकि मानवमात्र के लिए इसका श्रेष्ठ उपयोग हो सके।"

प्रथम मुद्रित पुस्तकें

दूसरे देशों के लोग यदि महान कलाकारों द्वारा रचित लेप-चित्रों, मूर्तियों या भवनों को देखना चाहते थे तो उन्हें इटली की यात्रा करनी पड़ती थी। किंतु जहाँ तक साहित्य की बात है जो कुछ भी इटली में लिखा गया विदेशों तक पहुँचा। ये सब सोलहवीं शताब्दी की क्रांतिकारी मुद्रण प्रौद्योगिकी की दक्षता की वजह से हुआ। इसके लिए यूरोपीय लोग अन्य लोगों के–मुद्रण प्रौद्योगिकी के लिए चीनियों के तथा मंगोल शासकों के ऋणी रहे, क्योंकि यूरोप के व्यापारी और राजनयिक मंगोल शासकों के राज-दरबार में अपनी यात्राओं के दौरान इस तकनीक से परिचित हुए थे। (ऐसा ही अन्य तीन प्रमुख तकनीकी नवीकरणों–आग्नेयास्त्र, कम्पास और फलक (Abacus) के विषय में भी हुआ)। इससे पहले किसी ग्रंथ की कुछ ही हस्तलिखित प्रतियाँ होती थीं। सन् 1455 में जर्मनमूल के जोहानेस गूटेनबर्ग (Johennes Gutenberg, 1400–58) जिन्होंने पहले छापेखाने का निर्माण किया, उनकी कार्यशाला में बाईबल की 150 प्रतियाँ छपीं। इससे पहले इतने ही समय में एक धर्मभिक्षु (Monk) बाईबल की केवल एक ही प्रति लिख पाता था।

पंद्रहवी शताब्दी तक अनेक क्लासिकी ग्रंथों जिनमें अधिकतर लातिनी ग्रंथ थे, उनका मुद्रण इटली में हुआ था। चूंकि मुद्रित पुस्तकें उपलब्ध होने लगीं और उनका क्रय संभव होने लगा, छात्रों को केवल अध्यापकों के व्याख्यानों से बने नोट पर निर्भर नहीं रहना पड़ा। अब विचार, मत और जानकारी पहले की अपेक्षा तेज़ी से प्रसारित हुए। नये विचारों को बढ़ावा देने वाली एक मुद्रित पुस्तक कई सौ पाठकों के पास बहुत जल्दी पहुँच सकती थी। अब पाठक एकांत में बैठकर पुस्तकों को पढ़ सकता था क्योंकि वह उन्हें बाज़ार से खरीद सकता था। इससे लोगों में पढ़ने की आदत का विकास हुआ।

पंद्रहवी शताब्दी के अंत से इटली की मानवतावादी संस्कृति का आल्प्स (Alps) पर्वत के पार बहुत तेज़ी से फैलने का मुख्य कारण वहाँ पर छपी हुई पुस्तकों का वितरण था। इससे स्पष्ट है कि पहले के बौद्धिक आंदोलन खास क्षेत्रों तक ही सीमित क्यों रहते थे।

मनुष्य की एक नयी संकल्पना

मानवतावादी संस्कृति की विशेषताओं में से एक था मानव जीवन पर धर्म का नियंत्रण कमजोर होना। इटली के निवासी भौतिक संपत्ति, शक्ति और गौरव से बहुत ज़्यादा आकृष्ट थे। परंतु ये ज़रूरी नहीं कि वे अधार्मिक थे। वेनिस के मानवतावादी फ्रेन्चेस्को बरबारो (Francesco Barbaro, 1390–1454) ने अपनी एक पुस्तिका में संपत्ति अधिग्रहण करने को एक विशेष गुण कहकर उसकी तरफ़दारी की। लोरेन्ज़ो वल्ला (Lorenzo Valla, 1406–1457)

विश्वास करते थे कि इतिहास का अध्ययन मुनष्य को पूर्णतया जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करता है, उन्होंने अपनी पुस्तक *ऑनप्लेज़र* में भोग-विलास पर लगाई गई ईसाई धर्म की निषेधाज्ञा की आलोचना की। इस समय लोगों में अच्छे व्यवहारों के प्रति दिलचस्पी थी– व्यक्ति को किस तरह विनम्रता से बोलना चाहिए; कैसे कपड़े पहनने चाहिए और एक सभ्य व्यक्ति को किसमें दक्षता हासिल करनी चाहिए।

मानवतावाद का मतलब यह भी था कि व्यक्ति विशेष सत्ता और दौलत की होड़ को छोड़कर अन्य कई माध्यमों से अपने जीवन को रूप दे सकता था। यह आदर्श इस विश्वास के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा था कि मनुष्य का स्वभाव बहुमुखी है जो कि तीन भिन्न-भिन्न वर्गों जिसमें सामंती समाज विश्वास करता था, के विरुद्ध गया।

निकोलो मैक्यिावेली (Niccolo Machiavelli) अपने ग्रंथ *दि प्रिंस* (1513) के पंद्रहवें अध्याय में मनुष्य के स्वभाव के बारे में लिखते हैं–

"काल्पनिक बातों को यदि अलग कर दें और केवल उन्हीं विषयों के बारे में सोचें जो वास्तव में हैं, मैं यह कहता हूँ कि जब भी मनुष्यों के बारे में चर्चा होती है (विशेषकर राजकुमारों के बारे में, जो जनता की नजर में रहते हैं) तो इनमें अनेक गुण देखे जाते हैं जिनके कारण वे प्रशंसा या निंदा के योग्य बने हैं। उदाहरण के लिए, कुछ को दानी माना जाता है और अन्य को कंजूस। कुछ लोगों को हितैषी माना जाता है तो अन्य को लोभी कहा जाता है; कुछ निर्दयी और कुछ दयालु। एक व्यक्ति अविश्वसनीय और दूसरा विश्वसनीय; एक व्यक्ति पौरुषहीन और कायर; दूसरा खूँखार और साहसी; एक व्यक्ति शिष्ट दूसरा घमंडी; एक व्यक्ति कामुक दूसरा पवित्र; एक निष्कपट दूसरा चालाक; एक अड़ियल दूसरा लचीला; एक गंभीर दूसरा छिछोरा; एक धार्मिक दूसरा संदेही इत्यादि।

मैक्यिावेली यह मानते थे कि 'सभी मनुष्य बुरे हैं और वह अपने दुष्ट स्वभाव को प्रदर्शित करने में सदैव तत्पर रहते हैं क्योंकि कुछ हद तक मनुष्य की इच्छाएँ अपूर्ण रह जाती हैं।' मैक्यिावेली ने देखा कि इसके पीछे, प्रमुख कारण है कि मनुष्य अपने समस्त कार्यों में अपना स्वार्थ देखता है।"

महिलाओं की आकांक्षाएँ

वैयक्तिकता (individuality) और नागरिकता के नए विचारों से महिलाओं को दूर रखा गया। सार्वजनिक जीवन में अभिजात व संपन्न परिवार के पुरुषों का प्रभुत्व था और घर-परिवार के मामले में भी वे ही निर्णय लेते थे। उस समय लोग अपने लड़कों को ही शिक्षा देते थे जिससे उनके बाद वे उनके खानदानी पेशे या जीवन की आम ज़िम्मेदारियों को उठा सकें। कभी-कभी वे अपने छोटे लड़कों को धार्मिक कार्य के लिए चर्च को सौंप देते थे, यद्यपि विवाह में प्राप्त महिलाओं के दहेज़ को वे अपने पारिवारिक कारोबारों में लगा देते थे, तथापि महिलाओं को यह अधिकार नहीं था कि वे अपने पति को कारोबार चलाने के बारे में कोई राय दें। प्राय: कारोबारी मैत्री को सुदृढ़ करने के लिए दो परिवारों में आपस में विवाह संबंध होते थे। अगर पर्याप्त दहेज़ का प्रबंध नहीं हो पाता था तो शादीशुदा लड़कियों को ईसाई मठों में भिक्षुणी (Nun) का जीवन बिताने के लिए भेज दिया जाता था। आम तौर पर सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी बहुत सीमित थी और उन्हें घर-परिवार को चलाने वाले के रूप में देखा जाता था।

व्यापारी परिवारों में महिलाओं की स्थिति कुछ भिन्न थी। दुकानदारों की स्त्रियाँ दुकानों को चलाने में प्रायः उनकी सहायता करती थीं। व्यापारी और साहूकार परिवारों की पत्नियाँ, परिवार के कारोबार को उस स्थिति में सँभालती थीं जब उनके पति लंबे समय के लिए दूर-दराज़ स्थानों को व्यापार के लिए जाते थे। अभिजात्य संपन्न परिवारों के विपरीत, व्यापारी परिवारों में यदि व्यापारी की कम आयु में मृत्यु हो जाती थी तो उसकी पत्नी सार्वजनिक जीवन में बड़ी भूमिका निभाने के लिए बाध्य होती थी।

पर उस काल की कुछ महिलाएँ बौद्धिक रूप से बहुत रचनात्मक थीं और मानवतावादी शिक्षा की भूमिका के बारे में संवेदनशील थीं। वेनिस निवासी कसान्द्रा फेदेले (Cassandra Fedele, 1465-1558) ने लिखा, "यद्यपि महिलाओं को शिक्षा न तो पुरस्कार देती है न किसी सम्मान का आश्वासन, तथापि प्रत्येक महिला को सभी प्रकार की शिक्षा को प्राप्त करने की इच्छा रखनी चाहिए और उसे ग्रहण करना चाहिए।" वह उस समय की उन थोड़ी सी महिलाओं में से एक ऐसी महिला थी जिन्होंने तत्कालीन इस विचारधारा को चुनौती दी कि एक मानवतावादी विद्वान के गुण एक महिला के पास नहीं हो सकते। फेदेले का नाम यूनानी और लातिनी भाषा के विद्वानों के रूप में विख्यात था। उन्हें पादुआ विश्वविद्यालय में भाषण देने के लिए आमंत्रित किया गया था।

इसाबेला दि इस्ते।

फेदेले की रचनाओं से यह बात सामने आती है कि इस काल में सब लोग शिक्षा को बहुत महत्त्व देते थे। वे वेनिस की अनेक लेखिकाओं में से एक थीं जिन्होंने गणतंत्र की आलोचना "स्वतंत्रता की एक बहुत सीमित परिभाषा निर्धारित करने के लिए की, जो महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों की इच्छा का ज्यादा समर्थन करती थी।" इस काल की एक अन्य प्रतिभाशाली महिला मंटुआ की मार्चिसा ईसाबेला दि इस्ते (Isabella d' Este,1474-1539) थीं। उन्होंने अपने पति की अनुपस्थिति में अपने राज्य पर शासन किया। यद्यपि मंटुआ, एक छोटा राज्य था तथापि उसका राजदरबार अपनी बौद्धिक प्रतिभा के लिए प्रसिद्ध था। महिलाओं की रचनाओं से उनके इस दृढ़ विश्वास का पता चलता है कि उन्हें पुरुष-प्रधान समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए अधिक आर्थिक स्वायत्तता, संपत्ति और शिक्षा मिलनी चाहिए।

क्रियाकलाप 3

महिलाओं की आकांक्षाओं के संदर्भ में एक महिला (फेदेले) और एक पुरुष (कास्टिल्योनी) द्वारा अभिव्यक्त भावों की तुलना कीजिए? उन लोगों की सोच में क्या महिलाओं का एक निर्दिष्ट वर्ग ही था?

लेखक और कूटनीतिज्ञ, बाल्थासार कास्टिल्योनी (Balthasar Castiglione) ने अपनी पुस्तक *दि कोर्टियर* (1528) में लिखा है–

मेरे विचार से अपने तौर-तरीके, व्यवहार, बातचीत के तरीके, भाव-भंगिमा और छवि में एक महिला पुरुष के सदृश नहीं होनी चाहिए। जैसे कि यह कहना बिलकुल उपयुक्त होगा कि पुरुषों को हट्टा-कट्टा और पौरुषसंपन्न होना चाहिए इसी तरह एक स्त्री के लिए यह अच्छा ही है कि उसमें कोमलता और सहृदयता हो, एक स्त्रियोचित मधुरता का आभास उसके हर हाव-भाव में हो और यह उसके चाल-चलन, रहन-सहन और हर ऐसे कार्य में हो जो वह करती है, ताकि ये सारे गुण उसे हर हाल में एक स्त्री के रूप में ही दिखाएँ, न कि किसी पुरुष के सदृश। यदि उन महानुभावों द्वारा दरबारियों को सिखाए गए नियमों में इन नीति वचनों को जोड़ दिया जाए तो महिलाएँ इनमें से अनेक को अपनाकर खुद को बेहतरीन गुणों से सुसज्जित कर सकेंगी। क्योंकि मेरा यह मानना है कि मस्तिष्क के कुछ ऐसे गुण हैं जो महिलाओं के लिए उतने ही आवश्यक हैं जितने कि पुरुष के लिए जैसे कि अच्छे कुल का होना, दिखावे का परित्याग करना, सहज रूप से शालीन होना, आचरणवान, चतुर और बुद्धिमान होना, गर्वी, ईर्ष्यालु, कटु और उद्दंड न होना...जिससे महिलाएँ उन क्रीड़ाओं को, शिष्टता और मनोहरता के साथ संपन्न कर सकें, जो उनके लिए उपयुक्त हैं।

© NCERT not to be republished

ईसाई धर्म के अंतर्गत वाद-विवाद

व्यापार और सरकार, सैनिक विजय और कूटनीतिक संपर्कों के कारण इटली के नगरों और राजदरबारों के दूर-दूर के देशों से संपर्क स्थापित हुए। नयी संस्कृति की शिक्षित और समृद्धिशाली लोगों द्वारा प्रशंसा ही नहीं की गई वरन् उसको अपनाया भी गया। परंतु इन नए विचारों में कुछ ही आम आदमी तक पहुँच सके क्योंकि वे साक्षर नहीं थे।

पंद्रहवीं और आरंभिक सोलहवीं शताब्दियों में उत्तरी यूरोप के विश्वविद्यालयों के अनेक विद्वान मानवतावादी विचारों की ओर आकर्षित हुए। अपने इतालवी सहकर्मियों की तरह उन्होंने भी यूनान और रोम के क्लासिक ग्रंथों और ईसाई धर्मग्रंथों के अध्ययन पर अधिक ध्यान दिया। पर इटली के विपरीत जहाँ पेशेवर विद्वान मानवतावादी आंदोलन पर हावी रहे, उत्तरी यूरोप में मानवतावाद ने ईसाई चर्च के अनेक सदस्यों को आकर्षित किया। उन्होंने ईसाइयों को अपने पुराने धर्मग्रथों में बताए गए तरीकों से धर्म का पालन करने का आह्वान किया। साथ ही उन्होंने अनावश्यक कर्मकांडों को त्यागने की बात की और उनकी यह कहकर निंदा की कि उन्हें एक सरल धर्म में बाद में जोड़ा गया है। मानव के बारे में उनका दृष्टिकोण बिलकुल नया था क्योंकि वे उसे एक मुक्त विवेकपूर्ण कर्ता समझते थे। बाद के दार्शनिक बार-बार इसी बात को दोहराते रहे। वे एक दूरवर्ती ईश्वर में विश्वास रखते थे और मानते थे कि उसने मनुष्य बनाया है लेकिन उसे अपना जीवन मुक्त रूप से चलाने की पूरी आज़ादी भी दी है। वे यह भी मानते थे कि मनुष्य को अपनी खुशी इसी विश्व में वर्तमान में ही ढूँढ़नी चाहिए।

ईसाई मानवतावादी जैसे कि इंग्लैंड के टॉमस मोर (Thomas More, 1478-1535) और हालैंड के इरेस्मस, (Erasmus,1466-1536) का यह मानना था कि चर्च एक लालची और साधारण लोगों से बात-बात पर लूट-खसोट करने वाली संस्था बन गई। पादरियों का लोगों से धन ठगने का सबसे सरल तरीका 'पाप-स्वीकारोक्ति' (indulgences) नामक दस्तावेज़ था जो व्यक्ति को उसके सारे किए गए पापों से छुटकारा दिला सकता था। ईसाइयों को बाईबल के स्थानीय भाषाओं में छपे अनुवाद से यह ज्ञात हो गया कि उनका धर्म इस प्रकार की प्रथाओं के प्रचलन की आज्ञा नहीं देता है।

यूरोप के लगभग प्रत्येक भाग में किसानों ने चर्च द्वारा लगाए गए इस प्रकार के अनेक करों का विरोध किया। इसके साथ-साथ राजा भी राज-काज में चर्च की दखलअंदाज़ी से चिढ़ते थे। जब मानवतावादियों ने उन्हें यह सूचित किया कि न्यायिक और वित्तीय शक्तियों पर पादरियों का दावा 'कॉन्स्टैनटाइन के अनुदान' नामक एक दस्तावेज़ से उत्पन्न होता है जो कि प्रथम ईसाई रोमन सम्राट कॉन्स्टैनटाइन द्वारा संभवतः जारी किया गया था, तो उन राजाओं को खुशी हुई क्योंकि मानवातावादी विद्वान यह दर्शाने में सफल रहे कि कॉन्स्टैनटाइन का वह दस्तावेज़ असली नहीं बल्कि परिवर्ती काल में जालसाजी से तैयार किया गया था।

1517 में एक जर्मन युवा भिक्षु मार्टिन लूथर (Martin Luther, 1483-1546) ने कैथलिक चर्च के विरुद्ध अभियान छेड़ा और इसके लिए उसने दलील पेश की कि मनुष्य को ईश्वर से संपर्क साधने के लिए पादरी की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने अपने अनुयायियों को आदेश दिया कि वे ईश्वर में पूर्ण विश्वास रखें क्योंकि केवल उनका विश्वास ही उन्हें एक सम्यक् जीवन की ओर ले जा सकता है और उन्हें स्वर्ग में प्रवेश दिला सकता है। इस आंदोलन को प्रोटैस्टेंट सुधारवाद नाम दिया गया जिसके कारण जर्मनी और स्विटज़रलैंड के

© NCERT not to be republished

चर्च ने पोप तथा कैथलिक चर्च से अपने संबंध समाप्त कर दिए। स्विटज़रलैंड में लूथर के विचारों को उलरिक ज़्विंगली (Ulrich Zwingli, 1484–1531) और उसके बाद जौं कैल्विन (Jean Calvin, 1509–64) ने काफी लोकप्रिय बनाया। व्यापारियों से समर्थन मिलने के कारण सुधारकों की लोकप्रियता शहरों में अधिक थी, जबकि ग्रामीण इलाकों में कैथलिक चर्च का प्रभाव बरकरार रहा। अन्य जर्मन सुधारक जैसे कि एनाबेपटिस्ट सम्प्रदाय के नेता इनसे कहीं अधिक उग्र-सुधारक थे। उन्होंने मोक्ष (salvation) के विचार को हर तरह के सामाजिक-उत्पीड़न के अंत होने के साथ जोड़ दिया। उनका कहना था कि क्योंकि ईश्वर ने सभी इनसानों को एक जैसा बनाया है इसलिए उनसे कर देने की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए और उन्हें अपना पादरी चुनने का अधिकार होना चाहिए। इसने सामंतवाद द्वारा उत्पीड़ित किसानों को आकर्षित किया।

न्यू टेस्टामेंट बाईबल का वह खंड है जिसमें ईसा मसीह का जीवन-चरित्र, धर्मोपदेश और प्रारंभिक अनुयायियों का उल्लेख है।

1506 में अंग्रेज़ी भाषा में बाईबल का अनुवाद करने वाले, लूथरवादी अंग्रेज़, विलियम टिंडेल (William Tyndale, 1494–1536) ने प्रोटैस्टेंटवाद का इस तरह समर्थन किया:

"इस बात से सब लोग सहमत होंगे कि वे आपको धर्मग्रंथ के ज्ञान से दूर रखने के लिए यह चाहते थे कि धर्मग्रंथ के अनुवाद आपकी मातृभाषा में उपलब्ध न हो सकें जिससे दुनिया अंधकार में ही रहे और वे [पुरोहित वर्ग] लोगों के अंत:करण (conscience) में बने रहें जिससे उनके द्वारा बनाए व्यर्थ के अंधविश्वास और झूठे धर्मसिद्धांत चलते रहें; जिसके रहते उनकी ऊँची आकांक्षाएँ और अतृप्त लोलुपता पूरी हो सके। इस तरह वे राजा, सम्राट और यहाँ तक कि अपने को ईश्वर से भी ऊँचा बना सके... जिस बात ने मुझे मुख्य रूप से *न्यू टेस्टामेंट* का अनुवाद करने की प्रेरणा दी। मुझे अपने अनुभवों से ज्ञात हुआ कि सामान्य लोगों को किसी भी सच्चाई की तब तक जानकारी नहीं हो सकती जब तक उनके पास अपने धर्मग्रंथ के मातृभाषा में अनुवाद उपलब्ध न हों। इन अनुवादों से ही वे धर्मग्रंथ की परिपाटी, क्रम और अर्थ समझ सकेंगे।

लूथर ने आमूल परिवर्तनवाद (Radicalism) का समर्थन नहीं किया। उन्होंने आह्वान किया कि जर्मन शासक समकालीन किसान विद्रोह का दमन करें। ऐसा इन शासकों ने 1525 में किया। पर इसके बावजूद आमूल परिवर्तनवाद बना रहा। आमूल परिवर्तनवादी फ्रांस में प्रोटैस्टेंटों के विरोध से मिल गए जिन्होंने कैथलिक शासकों के अत्याचार के कारण यह दावा करना शुरू कर दिया था कि जनता को अत्याचारी शासक को अपदस्थ करने का अधिकार है और वे उसके स्थान पर अपने पसंद के व्यक्ति को शासक बना सकते हैं। अंतत: यूरोप के अनेक क्षेत्रों की तरह फ्रांस में भी कैथलिक चर्च ने प्रोटैस्टेंट लोगों को अपनी पसंद के अनुसार उपासना करने की छूट दी। इंग्लैंड के शासकों ने पोप से अपने संबंध तोड़ दिए। इसके उपरांत राजा/रानी इंग्लैंड के चर्च के प्रमुख बन गए।

कैथलिक चर्च स्वयं भी इन विचारधाराओं के प्रभाव से अछूता नहीं रह सका और उसने अनेक आंतरिक सुधार करने प्रारंभ कर दिए। स्पेन और इटली में पादरियों ने सादा जीवन और

क्रियाकलाप 4

वे कौन से मुद्दे थे जिनको लेकर प्रोटैस्टेंट धर्म के अनुयायी कैथलिक चर्च की आलोचना करते थे?

निर्धनों की सेवा पर जोर दिया। स्पेन में, प्रोटैस्टेंट लोगों से संघर्ष करने के लिए इग्नेशियस लोयोला (Ignatius Loyala) ने 1540 में 'सोसाइटी ऑफ जीसस' नामक संस्था की स्थापना की। उनके अनुयायी जेसुइट कहलाते थे और उनका ध्येय निर्धनों की सेवा करना और दूसरी संस्कृतियों के बारे में अपने ज्ञान को ज्यादा व्यापक बनाना था।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियाँ	
1516	टॉमस मोर की *यूटोपिया* (Utopia) का प्रकाशन
1517	मॉर्टिन लूथर द्वारा *नाइन्टी फाईव थिसेज़* की रचना
1522	लूथर द्वारा बाईबल का जर्मन में अनुवाद
1525	जर्मनी में किसान विद्रोह
1543	एन्ड्रीयास वेसेलियस द्वारा *ऑन ऐनॉटमी* ग्रंथ की रचना
1559	इंग्लैंड में आँग्ल-चर्च की स्थापना जिसके प्रमुख राजा/रानी थे
1569	गेरहार्डस मरकेटर (Gerhardus Mercator) ने पृथ्वी का पहला बेलनाकार मानचित्र (Cylindrical Map) बनाया
1582	पोप ग्रैगरी XIII के द्वारा ग्रैगोरियन (Gregorian) कैलेंडर का प्रचलन
1628	विलियम हार्वे (William Harvey) ने हृदय को रुधिर-परिसंचरण (Blood circutaion) से जोड़ा
1673	पेरिस में 'अकादमी ऑफ साइंसेज़' की स्थापना
1687	आइज़क न्यूटन के *प्रिन्सिपिया मैथेमेटिका* (Principia Mathematica) का प्रकाशन

खगोलीय का अर्थ दैवी या स्वर्गीय है जबकि पार्थिव में दुनियावी गुण अंतर्निहित है।

कोपरनिकसीय क्रांति

ईसाइयों की यह धारणा थी कि मनुष्य पापी है इस पर वैज्ञानिकों ने पूर्णतया अलग दृष्टिकोण से आपत्ति की। यूरोपीय विज्ञान के क्षेत्र में एक युगांतरकारी परिवर्तन मॉर्टिन लूथर के समकालीन कोपरनिकस (1473-1543) के काम से आया। ईसाइयों का यह विश्वास था कि पृथ्वी पापों से भरी हुई है और पापों की अधिकता के कारण वह स्थिर है। पृथ्वी, ब्रह्मांड (universe) के बीच में स्थिर है जिसके चारों ओर खगोलीय गृह (celestial planets) घूम रहे हैं।

कोपरनिकस का आत्म-चित्र।

कोपरनिकस ने यह घोषणा की कि पृथ्वी समेत सारे ग्रह सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करते हैं। कोपरनिकस एक निष्ठावान ईसाई थे और वह इस बात से भयभीत थे कि उनकी इस नयी खोज से परंपरावादी ईसाई धर्माधिकारियों में घोर-प्रतिक्रिया उत्पन्न हो सकती है। यही कारण था कि वह अपनी पाण्डुलिपि *दि रिवल्यूशनिबस* (De revolutionibus-परिभ्रमण) को प्रकाशित नहीं कराना चाहते थे। जब वह अपनी मृत्यु-शैया पर पड़े थे तब उन्होंने यह पाण्डुलिपि अपने अनुयायी जोशिम रिटिकस (Joachim Rheticus) को सौंप दी। उनके

इन विचारों को ग्रहण करने में लोगों को थोड़ा समय लगा। काफी समय बाद यानि आधी शताब्दी से अधिक समय बीतने पर खगोलशास्त्री जोहानेस कैप्लर (Johannes Kepler, 1571–1630) तथा गैलिलियो गैलिली (Galileo Galilei, 1564–1642) ने अपने लेखों द्वारा 'स्वर्ग' और 'पृथ्वी' के अंतर को समाप्त कर दिया। कैप्लर ने अपने ग्रंथ *कॉस्मोग्राफ़िकल मिस्ट्री* (Cosmographical Mystery-खगोलीय रहस्य) में कोपरनिकस के सूर्य-केंद्रित सौरमंडलीय सिद्धांत को लोकप्रिय बनाया जिससे यह सिद्ध हुआ कि सारे ग्रह सूर्य के चारों ओर वृत्ताकार (circles) रूप में नहीं बल्कि दीर्घ वृत्ताकार (ellipses) मार्ग पर परिक्रमा करते हैं। गैलिलियो ने अपने ग्रंथ *दि मोशन* (The Motion, गति) में गतिशील विश्व के सिद्धांतों की पुष्टि की। विज्ञान के जगत में इस क्रांति ने न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के साथ अपनी पराकाष्ठा की ऊँचाई को छू लिया।

ब्रह्मांड का अध्ययन

गैलिलियो ने एक बार टिप्पणी की कि बाईबल जिस स्वर्ग का मार्ग आलोकित करता है वह स्वर्ग किस प्रकार चलता है, उसके बारे में कुछ नहीं बताता। इन विचारकों ने हमें बताया कि ज्ञान विश्वास से हटकर अवलोकन एवं प्रयोगों पर आधारित है। जैसे-जैसे इन वैज्ञानिकों ने ज्ञान की खोज का रास्ता दिखाया वैसे-वैसे भौतिकी, रसायन शास्त्र और जीव विज्ञान के क्षेत्र में अनेक प्रयोग और अन्वेषण कार्य बहुत तेज़ी से पनपने लगे। इतिहासकारों ने मनुष्य और प्रकृति के ज्ञान के इस नए दृष्टिकोण को वैज्ञानिक क्रांति का नाम दिया।

परिणामस्वरूप संदेहवादियों और नास्तिकों के मन में सारी सृष्टि की रचना के स्रोत के रूप में प्रकृति ईश्वर का स्थान लेने लगी। यहाँ तक कि वे लोग जिन्होंने ईश्वर में अपने विश्वास को बरकरार रखा वे भी एक दूरस्थ ईश्वर की बात करने लगे जो भौतिक दुनिया में जीवन को प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित नहीं करता था। इस प्रकार के विचारों को वैज्ञानिक संस्थाओं के माध्यम से लोकप्रिय बनाया गया जिससे सार्वजनिक क्षेत्र में एक नयी वैज्ञानिक संस्कृति की स्थापना हुई। 1670 में बनी पेरिस अकादमी और 1662 में वास्तविक ज्ञान के प्रसार के लिए लंदन में गठित रॉयल सोसाइटी ने लोगों की जानकारी के लिए व्याख्यानों का आयोजन किया और सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए प्रयोग करवाए।

चौदहवीं सदी में क्या यूरोप में 'पुनर्जागरण' हुआ था?

अब हम 'पुनर्जागरण' की अवधारणा पर पुनर्विचार करें। क्या हम यह कह सकते हैं कि इस काल में अतीत से साफ विच्छेद हुआ और यूनानी और रोमन परंपराओं से जुड़े विचारों का पुनर्जन्म हुआ? क्या इससे पहले का काल (बारहवीं और तेरहवीं शताब्दियाँ) अंधकार का समय था?

इंग्लैंड के पीटर बर्क (Peter Burke) जैसे हाल ही के लेखकों का यह सुझाव है कि बर्कहार्ट के ये विचार अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। बर्कहार्ट इस काल और इससे पहले के कालों के फ़र्कों को कुछ बढ़ा-चढ़ा कर पेश कर रहे थे। ऐसा करने में उन्होंने पुनर्जागरण शब्द

का प्रयोग किया। इस शब्द में यह अंतर्निहित है कि यूनानी और रोमन सभ्यताओं का चौदहवीं शताब्दी में पुनर्जन्म हुआ और समकालीन विद्वानों और कलाकारों में ईसाई विश्वदृष्टि की जगह पूर्व ईसाई विश्वदृष्टि का प्रचार-प्रसार किया। दोनों ही तर्क अतिशयोक्तिपूर्ण थे। पिछली शताब्दियों के विद्वान यूनानी और रोमन संस्कृतियों से परिचित थे और लोगों के जीवन में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान था।

यह कहना कि पुनर्जागरण, गतिशीलता और कलात्मक सृजनशीलता का काल था और इसके विपरीत, मध्यकाल अंधकारमय काल था जिसमें किसी प्रकार का विकास नहीं हुआ था, ज़रूरत से ज्यादा सरलीकरण है। इटली में पुनर्जागरण से जुड़े अनेक तत्व बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में पाए जा सकते हैं। कुछ इतिहासकारों ने इसका उल्लेख किया है कि नौवीं शताब्दी में फ्रांस में इसी प्रकार के साहित्यिक और कलात्मक रचनाओं के विचार पनपे।

यूरोप में इस समय आए सांस्कृतिक बदलाव में रोम और यूनान की 'क्लासिकी' सभ्यता का ही केवल हाथ नहीं था। रोमन संस्कृति के पुरातात्त्विक और साहित्यिक पुनरुद्धार ने भी इस सभ्यता के प्रति बहुत अधिक प्रशंसा के भाव उभारे। लेकिन एशिया में प्रौद्योगिकी और कार्य-कुशलता यूनानी और रोमन लोगों की तुलना में काफी विकसित थी। विश्व का बहुत बड़ा क्षेत्र आपस में सम्बद्ध हो चुका था और नौसंचालन (navigation) की नयी तकनीकों (विषय 8 में देखिए) ने लोगों के लिए पहले की तुलना में दूरदराज़ के क्षेत्रों की जलयात्रा को संभव बनाया। इस्लाम के विस्तार और मंगोलों की विजयों ने एशिया एवं उत्तरी अफ्रीका को यूरोप के साथ राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि व्यापार और कार्य-कुशलता के ज्ञान को सीखने के लिए आपस में जोड़ दिया। यूरोपियों ने न केवल यूनानियों और रोमवासियों से सीखा बल्कि भारत, अरब, ईरान, मध्य एशिया और चीन से भी ज्ञान प्राप्त किया। बहुत लंबे समय तक इन ऋणों को स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि जब इस काल का इतिहास लिखने की प्रक्रिया का प्रारंभ हुआ तब इतिहासकारों ने इसके यूरोप-केंद्रित दृष्टिकोण को सामने रखा।

इस काल में जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए उनमें धीरे-धीरे 'निजी' और 'सार्वजनिक' दो अलग-अलग क्षेत्र बनने लगे। जीवन के सार्वजनिक क्षेत्र का तात्पर्य सरकार के कार्यक्षेत्र और औपचारिक धर्म से संबंधित था और निजी क्षेत्र में परिवार और व्यक्ति का निजी धर्म था। व्यक्ति की दो भूमिकाएँ थीं–निजी और सार्वजनिक। वह न केवल तीन वर्गों (three orders) में से किसी एक वर्ग का सदस्य ही था बल्कि अपने आप में एक स्वतंत्र व्यक्ति था। एक कलाकार किसी संघ या गिल्ड (guild) का सदस्य मात्र ही नहीं होता था बल्कि वह अपने हुनर के लिए भी जाना जाता था। अठारहवीं शताब्दी में व्यक्ति की इस पहचान को राजनीतिक रूप में अभिव्यक्त किया गया, इस विश्वास के साथ कि प्रत्येक व्यक्ति के एकसमान राजनीतिक अधिकार हैं।

इस काल की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि भाषा के आधार पर यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों ने अपनी पहचान बनानी शुरू की। पहले, आंशिक रूप से रोमन साम्राज्य द्वारा और बाद में लातिनी भाषा और ईसाई धर्म द्वारा जुड़ा यूरोप अब अलग-अलग राज्यों में बँटने लगा। इन राज्यों के आंतरिक जुड़ाव का कारण समान भाषा का होना था।

© NCERT not to be republished

अभ्यास

संक्षेप में उत्तर दीजिए

1. चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दियों में यूनानी और रोमन संस्कृति के किन तत्वों को पुनर्जीवित किया गया?
2. इस काल की इटली की वास्तुकला और इस्लामी वास्तुकला की विशिष्टताओं की तुलना कीजिए?
3. मानवतावादी विचारों का अनुभव सबसे पहले इतालवी शहरों में क्यों हुआ?
4. वेनिस और समकालीन फ्रांस में 'अच्छी सरकार' के विचारों की तुलना कीजिए।

संक्षेप में निबंध लिखिए

5. मानवतावादी विचारों के क्या अभिलक्षण थे?
6. सत्रहवीं शताब्दी के यूरोपियों को विश्व किस प्रकार भिन्न लगा? उसका एक सुचिंतित विवरण दीजिए।

© NCERT not to be republished